नवधा भक्ति

(भक्ति के नौ सोपान)

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

नवधा भक्ति (भक्ति के नौ सोपान)

जो जाकि शरण गहे, ताको ताकि लाज
उलटे जल मछली चले, बहे जात गजराज

कहने का तात्पर्य है कि विश्वास मेरी दृष्टि में नौ प्रकार की भक्ति का मूल है। यदि विश्वास न होगा तो भक्ति मानस ह्रदय में उत्पन्न ही नहीं होगी। भक्त ह्रदय में अविश्वास का कोई स्थान नहीं। सम्भवतः यही विश्वास भक्ति पर कुछ लिखने की प्रेरणा देता है।

अतः यह साहस कर रही हूँ – ईश्वर से प्रार्थना है यदि कुछ लिखूं तो वह सभी भगवान के चरणों में समर्पित हो। सर्वप्रथम मैं अपनी बुद्धि भगवान के चरणों में समर्पित करती हूँ। ह्रदय से शब्द सुमनों द्वारा यह पूजा अर्चना के भाव कलमबद्ध करती हूँ।

– यशोधरा जागावत

—: नवधा भक्ति :—

भक्ति को जानने के लिये मेरी बुद्धि अति क्षीण है। भक्ति के विशाल सागर में पैर रखने के लिये साहस भी नहीं है। जो कुछ सुना व जो कुछ पुस्तकों में पढ़ा वही लिख रही हूँ। कहा गया है :—

प्रथम भक्ति संतन कर संगा
दूसरी रति मम कथा प्रसंगा

संतों का संग तो मुझे प्राप्त न हो सका। आज के साधन जैसे दूरदर्शन (T.V.) पर कथा सुनना तथा आस—पास मंदिरों में समय—समय पर आचार्यों द्वारा भागवत कथा राम कथा तथा भक्तमाल कथाओं का श्रवण।

वास्तव में भक्ति क्या है? भगवान के प्रति अनन्य प्रेम ही भक्ति है। जिस भक्त हृदय में भक्ति का अवतरण होता है तो भक्त के स्नेहिल हृदय में भक्ति नर्तन करती है। भक्त प्रसन्नचित्त दिखाई देता है। यही कारण है कि भक्त कह उठता है :—

भव सागर अब सूख गयो है,
फिकर नहीं मोहे तरनन की
मोहे लागि लगन हरि दरसन की

भक्त को किसी वस्तु अर्थात् सांसारिक वस्तु की चाह भी नहीं होती वह तो केवल भगवान के गुणगाान करने में ही तल्लीन रहता है। यहां तक भी कहा गया है कि भगवान भक्तों के अधीन है फिर वह भक्त धनवान हो या निर्धन अध्यात्म भाव में यह कहा गया है :—

धन्वन्ता सोहि जानिये
जा के राम नाम धन होय।

भक्त को शारीरिक निर्वाह की आवश्यकता नहीं होती उसकी आवश्यकता की पूर्ति तो भगवान करता है। All India Magazine में भक्ति को Holistic Healing बताया है। साधु के लिये कहा है — They live in a truly dirty condition and they are free from all illness because they have faith and their spirit is magnificent. They do not think of their body, they think of the life their soul.

अतः कहा गया है —

गांठ गिरह नहीं बाँधते
मांगन में सकुचाय
पीछे पीछे हरि फिरे
कहूँ भूखो न रह जाय

भक्त सांसारिकता से विरक्त होता है। आसक्ति भक्ति मार्ग में व्यवधान उत्पन्न करती है। जहां भक्ति होती है वहां शोक नहीं होता। भक्त कभी भी भगवान से विभक्त नहीं होता। सीता पराभक्ति है जिन्हें असोक वाटिका में रखा गाय था अर्थात् जहां भक्ति है वहां शोक नहीं है भक्ति में विश्वास आवश्यक है। शबरी को विश्वास था कि राम आएंगे भक्त चरित्र यह दर्शाता है कि मानव को यदि विश्वास है तो भगवान अवश्य आऐंगे। भक्ति ईश्वर प्राप्ति का मार्ग है।

दीपक जलाने के लिये प्रयास करना पड़ता है। इसके लिये दीपक तेल व माचिस की आवश्यकता होती है। दीपक बुझाने के लिये किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती। भक्ति में ज्ञान की आवश्यकता नहीं ज्ञान में अहंकार छिपा होता हे। अहंकार भी तब होता है जब हम ज्ञान का वास्तविक अर्थ नहीं समझ पाते। ज्ञान को यदि अंग्रेजी में कहा जाए तो साधारण तौर पर knowledge (जानकार) परन्तु वास्तविक शब्द wisdom (wise) है। यही ज्ञान का सही अर्थ है। भगवान भक्त के लिये प्रतीक्षा का विषय हो सकता है। परीक्षा का विषय कदापि नहीं। भक्ति के द्वारा सहज ही ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान में पात्रता देखी जाती है। भक्त में पात्रता नहीं देखती जाती। भक्त कभी–कभी भक्ति में इतना तल्लीन हो जाता है कि उसे विधिवत पूजन का ध्यान ही नहीं रहता। भक्ति में भूलना सहज है।

भक्त का विभक्त होना सामान्य नहीं है। फिर भी भक्ति को भक्ति शास्त्रों में सरलता के लिये नौ भागों में विभक्त किया गया है।

श्रवणं कीर्तन विष्णो स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वदनं दास्यं सख्यामात्मं निवेदनमं।।

(1) भगवान श्री कृष्ण के नाम का श्रवण (2) कीर्तन (3) स्मरण (4) पादसेवन (5) अर्चन (6) वंदन (7) दास्य (8) साख्य (9) आत्म निवेदन। भक्ति के ये नौ प्रकार है।

प्रथम भक्ति श्रवण :–
श्रवण भक्ति

श्रवणं नवधा भक्ति का प्रथम सोपान है। कहा गया है :–

जिन हरि कथा सुनिहि नहीं काना।
श्रवण रंघ्र तेहि अहि भवन समाना।।

तात्पर्य स्पष्ट है जिन्होंने भगवान की कथा नहीं सुनी उनके कानों के छिद्र सांप के बिल के समान है। जब भक्त भक्ति के इस पायदान पर अपना चरण रखता है, तो भक्ति उसके हृदय में स्वतः ही नर्तन करने लगती है। भक्त हृदय भगवान की ओर खिंचता चला जाता है। भगवत नाम श्रवण से पापों का नाश होता है, चित्त कोमल व निर्मल हो जाता है। हम सभी जानते हैं भगवान श्रीकृष्ण को नवनीत चोरम् कहा है, वे भक्तों के नवनीत रूपी हृदय को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। विभीषण ने श्री राम के दर्शन करके कहा :–

श्रवण सुजस सुनि आय हूँ, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुवीर।।

भक्त शिरोमणि श्री तुलसी दास जी द्वारा यह पंक्ति यही तात्पर्य दर्शाती है कि प्रभु महिमा का श्रवण करते–करते भक्त भगवान की शरणागति की ओर अग्रसर होता है, भगवान उसे सहज ही अपनी शरण में ले लेते हैं। आचार्यों से सुना हैं कथा श्रवण भाग्य का विषय नहीं है अर्थात् कथा भाग्य से नहीं मिलती अपितु जब मनुष्य के अनेक जन्मों के पुण्य उदय होते हैं, तब कथा श्रवण का अवसर प्राप्त होता है। कथा श्रवण के संकल्प मात्र से ही हमारा मन शुद्ध होने लगता है। परमात्मा की कथा बार–बार सुनने से प्रभु के प्रति प्रेम भाव जगेगा नवधा भक्ति के नौ सौपानों से पृथक हैं। प्रेम–लक्षणा भक्ति कोई भी भक्ति मार्ग हो उसमें परमार्थ और व्यवहार भिन्न नहीं होते, प्रत्येक व्यवहार को प्रभुमय माने गोपियों की निष्काम भक्ति होने के कारण गोपियों को भक्ति मार्ग की आचार्य कहा है। उनकी अनन्य प्रेम लक्षणा भक्ति की पराकाष्ठा यह भी कि उन्हें भगवान श्री कृष्ण की बांसुरी सुनने पर अर्थात् श्रवण करने पर उसमें अपना ही नाम सुनाई देता था।

भागवत् कथा का श्रवण करने के बाद मनुष्य का स्वभाव सरल हो जाता है। कथा श्रवण से दृष्टि दिव्य बनती है, मन प्रभु भक्ति में एकाग्र होने की चेष्टा करता है। हम दिन में तीन बार भोजन करते हैं तो भागवत कथा का श्रवण एक ही बार करना पर्याप्त है, विचार कर देखें। जिस प्रकार उदर को बार–बार भोजन चाहिये उसी प्रकार मन मस्तिष्क को भागवत् कथा रूपी पौष्टिक भोजन चाहिये अन्यथा मन मस्तिष्क के स्वस्थ न होने पर शरीर भी अस्वस्थ होगा अर्थात् विकार उत्पन्न होंगे। भागवत् कथा को रसायन कहा है। हमारे कान जैसा सुनेंगे हमारे शरीर में वैसी ही क्रियाएँ अथवा रसायन उत्पन्न होंगे। इसे सिद्ध करने के लिये विदेशी वैज्ञानिकों ने भी प्रयोग किये हैं।

न्यायाधीश जी ने एक अपराधी को फांसी की सजा सुनाई कुछ वैज्ञानिकों ने कहा हम इसके साथ एक एक्सपेरीमेंट करना चाहते हैं। फांसी से इसकी मृत्यु तो निश्चित है – अतः उन्होंने अपराधी का मुंह कपड़े से ढक दिया और एक मांसाहारी चूहा अथवा एक साधारण चूहा उस पर छोड़ दिया। जब अपराधी को चूहे ने काटा तो शोर मचा दिया कि सांप ने काट लिया। यह सुनते ही उस अपराधी की मृत्यु हो गई। जब उसके शरीर का पोस्टमार्टम किया तो उसके शरीर से सांप का जहर निकला। केवल मृत्यु के समय यह सुनने मात्र से कि सांप ने काट लिया तो उसके शरीर से वही रसायन प्राप्त हुआ तो भक्त यदि भगवान का श्रवण करेगा तो क्या उसके शरीर में भक्ति का रसायन नहीं घुलेगा।

भागवत् कथा को औषधि, रसायन, आसव व अमृत कहा गया है। भगवान शंकर के लिये यह आसव है, श्री शुकदेव जी के लिये औषधि, सनत कुमारों के लिये रसायन व श्री परीक्षित जी के लिये अमृत है। 16 वर्ष की आयु से मनुष्य में इन्द्रियों का मंथन शुरू हो जाता है। इस मंथन से विषय व अमृत दोनों ही निकलते हैं। कथा श्रवण के लिये किसका चुनाव किया जाय या किस दिशा में जाए यह ज्ञान प्राप्त होता है। भगवत् कृपा से भक्ति की प्राप्ति होती है। कथा आयोजन से अर्थ का विकेन्द्रीयकरण होता है।

ययाति का चरित्र यह दर्शाता है कि इन्द्रियों को शान्त रखना ही आवश्यक है। पृथु का चरित्र शासन व्यवस्था हेतु पढ़ने योग्य है। जिस मनुष्य ने मनुष्य का जन्म लेकर कथा नहीं सुनी, उसने केवल अपनी जननी को पीड़ा देने के लिये ही जन्म लिया अर्थात् मनुष्य जीवन व्यर्थ है। भक्ति और ज्ञान को एक ही तत्व कहा है। भक्ति की ऊँचाई ज्ञान की परिपक्वता है। ज्ञान की पराकाष्ठा ही भक्ति है। कथा श्रवण से पुण्य प्राप्त होगा, यह सम्भव नहीं है परन्तु कथा श्रवण से श्री राधा गोबिन्द के चरणों में प्रेम हो जाता है। पुण्य तो वैदिक अनुष्ठान तथा तीर्थयात्रा से भी प्राप्त हो जाता है। भागवत् कथा का श्रवण माता–पिता के रूप में भक्त का पोषण

माता–पिता के रूप में भक्त का पोषण करते हैं। जीव को कथा श्रवण से ही विश्राम प्राप्ति की अनुभूति प्राप्त होती है।

"Do not try to understand Shri Krishna,
Just try to love. Shri Krishna."

भगवान श्री कृष्ण जानने का नहीं अपितु प्रेम का विषय है। जानने के लिये :–

(1) द्वारिका योग पीठ है।
(2) मथुरा तत्व पीठ है।
(3) वृन्दावन रस पीठ है।
(4) कुरूक्षेत्र कर्म पीठ है।

भक्ति के अग्रिम सोपान पर लिखने से पहले यह कहूँगी कि श्रवण कथा का किया जाता है। वहीं श्रवण कीर्तन का भी होता है। अन्तर केवल यहीं है कि कथा केवल कथावाचक आचार्य करते हैं, सभी श्रोता शान्त बैठकर सुनते हैं। कीर्तन सभी भक्तजन श्रोता मिलकर करते हैं। कीर्तन में वह सामर्थ्य होती है कि कीर्तन करने से पाप भाग जाते हैं, भगवान के प्रति प्रेम जाग्रत होता है। चित्त शुद्ध हो जाता है।

कीर्तन

भक्त का मन जब श्री कृष्ण के प्रेम में सराबोर हो जाता है, तब उसके मुख से गान भजन अथवा कीर्तन उत्पन्न होता है, गोपियां जब श्री कृष्ण के प्रेम में परिपूर्ण हुई, कृष्ण के मथुरा चले जाने अथवा रास के मध्य से अर्न्तधान होने पर गोपियां श्री कृष्ण के प्रेम विरह में व्याकुल हो गई उनके मुख से गीत निकला जो गोपी गीत से विख्यात हुआ। कवि वियोगी हरि लिखते है :–

वियोगी होगा पहला कवि
आह से निपजा होगा गान

वही अंग्रेजी के कवि लिखते हैं :–

Our sweetest songs are those,
That tell of sadest thoughts.

- P.B. Shelly

कीर्तन करने पर भक्त के हृदय में भक्ति नर्तन करने लगती है और वह नृत्य करने के लिये सहसा सहज मन से खड़ा हो जाता है। कीर्तन नवधा भक्ति में से एक प्रभु को प्राप्ति का साधन है। श्री नारद जी को कीर्तन से ही भगवान की प्राप्ति हुई थी।

मीरा मगन भई हरि के गुन गाय

मीरा बाई की अनन्य भक्ति से कौन परिचित नहीं है। मीराबाई को संतों व भक्तों के साथ हरि का गुणगाान करने पर अनेकानेक लांछनों का सामना करना पडा। उन्हें बावरी व कुलनासिनी कहा गया :–

लोग कहें मीरा भई बावरी
सास कहे कुलनासि रे

परन्तु मीरा बाई के कुष्ण प्रेम ने सभी को त्याग दिया और उनका कृष्ण प्रेम इतना दृढ़ था कि विषपान करने में भी उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। वे कीर्तन कर केवल अपने गिरधर को रिझाती रहीं उन्हें किसी और धन की आवश्यकता ही नहीं रही क्योंकि उनके पास तो राम नाम का धन था।

पायो जी मैंने राम रतन धन पायो

कवि रसखान ने प्रत्येक जन्म में श्री कृष्ण का सानिध्य चाहा। चाहे उनका जन्म पशु, पक्षी, पत्थर का ही क्यों न हो। आप कृष्ण से कदापि दूर नहीं जाना चाहते थे। सूरदास जी बिना नेत्रों के श्री कृष्ण की बाल लीलाओं, गोपियों के विरह का वर्णन तथा श्री कृष्ण के श्रृंगार का वर्णन किया करते थे, नृत्य करते थे। उनके आन्तरिक चक्षु अत्यधिक प्रबल थे या यों कहा जाय कि वे अपने प्रभु का दर्शन, भीतर बाहर सब स्थानों पर किया करते थे। भगवान श्री कृष्ण के वैसे ही स्वरूप का दर्शन कर लेते थे जैसा प्रभु ने श्रृंगार किया हो। एक बार पुजारियों ने उनकी परीक्षा लेने के लिये श्री कृष्ण को वस्त्र धारण नहीं करवाए परन्तु सूरदास जी उनका वर्णन करते हुए कहा उठे :–

आज हम देखे हरि नंगम नंगा।

वही भक्त इस प्रकार कह सकता है जिसके हृदय में कृष्ण समाए हों। फिर उस भक्त को चर्म चक्षु की आवश्यकता ही नहीं होती

श्री प्रहलाद जी के भगवत कीर्तन में इतनी दिव्य शक्ति थी कि जो भी कीर्तन करते समय उनका हाथ पकड़ लेता था वह स्वतः ही कीर्तन करने लगता। कीर्तन कहीं भी हो सकता है सभी जीवों में भगवान का दर्शन करने वाले को भगवान के दर्शन कहीं भी हो जाते हैं। मन्दिर में भगवान है इसमें कोई सन्देह नहीं परन्तु मन्दिर में ही भगवान हैं यह सत्य नहीं। भगवान तो सर्वत्र है।

आधुनिक युग में कीर्तन में श्रृंगार का भी अधिक ध्यान दिया जाता है उचित है। हम विवाह, मेले आदि में श्रृंगार करके जाते हैं परन्तु भक्ति में देहाभिमान से बचना आवश्यक है। हम कृत्रिम श्रृंगार कर लेंगे परन्तु इसका क्या लाभ है जिस देह के लिये श्रृंगार किया है वह तो नश्वर है। अतः श्रृंगार आत्मा का होना चाहिये। आत्मा का श्रृंगार करके कीर्तन करने पर मन भगवत् भक्ति में तल्लीन हो जाता है। परन्तु मनुष्य वही करता है जो वह चाहता है। गणिका अपने व्यवसाय के लिय श्रृंगार करती है परन्तु भक्त गोपी केवल अपने कृष्ण को रिझाने के लिये श्रृंगार करती है। यदि हम अपना सर्वस्व, आत्मा सब प्रभु को समर्पित कर देंगे तो फिर क्या होगा यह चिन्ता नहीं रहेगी।

तुम जो चाहते हो वही करते हो।
होता वही है जो मैं चाहता हूँ।।
यदि तू चाहे कि वही हो जो मैं चाहूँ।
तो फिर वही होगा जो तू चाहे।।

गोपियां नृत्य करते करते कृष्णमयी हो गई थी। उन्हें अपनी देह का ज्ञान भी नहीं रहता। यदि कृष्ण उनकी आंखों से ओझिल हो जाते तो वे विरह विहल हो उठती व एक गोपी दूसरी को कहती क्यों रोती है, मैं कृष्ण हूँ और सूरदास जी कह उठे :–

निस दिन बरसत नैन हमारे
सदा रहति पाक्स रितु हम पर जब ते स्याम सिधारे

यही नहीं जब भक्त ह्रदय में विरह वेदना होती है तो उसकी वेदना से भगवान भी द्रवित हो जाते हैं। भगवान जगन्नाथ जी के लिये कहा गया है :–

एक बार कृष्ण पत्नियों ने माता रोहिणी से हठ की कि हमें गोपियों की कथा सुनाएं रोहिणी जी ने उनसे कहा आप ऐसी हठ मत करिये परन्तु सभी ने यह सुनने की प्रबल इच्छा प्रकट की तो माना रोहिणी जी ने सुभद्रा जी को द्वार पर खड़ा कर यह आज्ञा दी कि कृष्ण और बलराम यहां न आने पाए परन्तु कहीं से वे दोनों भाई वहां आ गए। सुभद्रा जी ने अपने दोनों हाथ फैला कर उन्हें द्वार पर ही रोक लिया परन्तु जितनी कथा कृष्ण बलराम जी के कानों में पड़ी तो गोपियों की विरह व्यथा से तीनों पिघल गए द्रवित हो उठे। जगन्नाथ जी में तीनों का यह दारूण रूप है।

मीरा बाई ने गाया :–

ए री मैं तो प्रेम दीवानी
मेरो दरद न जाने कोय

भजन कीर्तन में आसक्ति भी भक्ति को सफल नहीं होने देती। सांसारिक विषयों से अनासक्त हुआ ह्रदय फिर चाहे भगवान को उलाहना ही क्यों न दे :–

प्रीतकरी काहू न सुख लहो
सारंग प्रीति करी सारंग सों
सन्मुख बान सहो
अलि सुत प्रीति करी जल सुत सों
सम्पुट मांझ गयो
हम जो प्रीति करी माधो सों
चलत न कछु कहो।

हनुमान जी की राम भक्ति से कौन परिचित नहीं है :–

कह हनुमंत विपति प्रभु सोई
जब तब सुमिरन भजन न होई।

भक्ति भगवत् प्राप्ति का साधन है। प्रत्येक साधना सम्पूर्ण है व एक दूसरे से सम्बन्धित है। किसी एक साधन अपनाने पर भक्त भक्ति मार्ग की ओर अग्रसर होने लगता है।

! स्मरण !

यस्य स्मरण मात्रेण जन्म संसार बन्धनात्।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभूविष्णबे।।

जब रिषी भ्रगु जी ने यह जानने का प्रयास किया कि किस भगवान की भक्ति की जा सकती है अथवा कौन से भगवान भक्त के अपराध करने पर भी अपने भक्त से विमुख नहीं होते। यह देखते हुए भ्रगु जी ने भगवान विष्णु के वक्षस्थल पर पैर का प्रहार किया परन्तु विष्णु जी ने भ्रगु जी के चरण पकड़ कर कहा मेरा वक्षस्थल अधिक कठोर है। आपको कहीं चोट तो नहीं लगी तब भ्रगु जी ने कहा कि केवल आप हैं जिनकी किसी भी साधन से भक्ति की जाय मनुष्य जन्म संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

जब हम भगवान का नाम कीर्तन, श्रवण करते हैं तो हमें भगवान से प्रेम हो जाता है। भगवान हमें अच्छे लगने लगते हैं। मेरा यह मानना है कि जो हमें अच्छा लगता है उसका स्मरण स्वतः ही रहने लगता है। कहा गया है :–

दुःख में सुमिरन सब करें सुख में करे न कोय

परन्तु यह मान लिया जाय कि संसार सागर में सुख है ही नहीं तो भगवान का नाम स्मरण होता रहेगा। माता कुंति भगवान कृष्ण की ऐसी परम भक्त थी कि जब भगवान हस्तिनापुर से द्वारका जाने लगे तो कृष्ण ने कहा मैं आपको कुछ देना चाहता हूँ मांगो तो कुन्ती ने दुःख मांगा।

सुख से तो विपदा भली
जो राम नाम रटवाय

आज के युग में भगवान से दुःख मांगने की विनती कोई नहीं कर सकता। कोई आपत्ति नहीं जो मांगा मिल जाय तो भगवान को भूले नहीं अर्थात् सुख प्राप्त होने पर भी उनका स्मरण रहे। कुछ भक्त तो ऐसे भी है जो कहते है :–

''हे नाथ मैं आपको भूलूं नहीं'' जिस क्षण मैं आपको भूलूं वह मेरे जीवन का अंतिम क्षण हो। सुना है भगवान भी मांगने वाले से पीछा छुड़ा लेते हैं, मेरा यह मानना है कि जीव भगवान से नहीं मांगे तो किससे मांगे।

तुम तजि और कौन पे जाऊं
का के द्वार जाय सीस नाऊं
पर हथ कहां बिकाऊं
ऐसो को दाता है समरथ
जा के दिये अघाऊं

मनुष्य जब भगवान के आगे हाथ जोड़कर मांगना है तो वह तो परब्रह्म हैं उन्हें बुरा नहीं लगता और सम्भव है कि जीव मांगते मांगते भूल जाय और बिना कुछ चाहे स्मरण करता रहे।

गोपियां सहज व सरल ह्रदया थी जब कृष्ण उनके घर माखन चुराने जाते तो उन्हें पकड़ लेती और मां यशोदा से शिकायत करती थी। परन्तु जब कृष्ण उनके घर माखन चुराने नहीं जाते तो प्रतीक्षा करती थी कि वह कब आएगा कब मेरे घर से माखन चुराएगा। यशोदा दधि मंथन करती थी तो अपने लाला का स्मरण करते हुए करती थी। तात्पर्य यह है कि कोई भी कार्य किया जाय भगवन् नाम का स्मरण रखा जाय तो घर बैठे भगवान आपको दर्शन देने आएंगे।

भक्त प्रहलाद जी भगवान के स्वरूप – स्मरणरूपी भक्ति के आचार्य हैं प्रियादास जी महाराज ने उनकी भक्ति पर लिखा है :–

सुमिरन सांचो कियो
लियो देखि सबही में
कैसे काटे तलवार है

प्रहलाद जी सभी में भगवत् दर्शन करते थे तो तलवार उन्हें कैसे काटती, जल उन्हें कैसे डुबोता, अग्नि उन्हें कैसे जलाती उनके कहने पर तो भगवान खम्भ (जड़) में से भी प्रकट हो गये। अतः भगवान में तत्व दर्शन करने वाला भक्त श्रेष्ठ है। नरसिंह भगवान के यह कहने पर कि मांगो प्रहलाद तो उन्होंने भगवान के चरणों में गिर कर यह वर मांगा कि आप माया से बंधे जीवों को मुक्त करिये यही नहीं यह वर मांगने की हठ की।

भक्त को अपने सुख की चिंता नहीं होती वह तो संसार के लिये सुख (कल्याण) मांगता है। सभी के लिये भगवान का स्मरण करता है। ध्यान रहे हम सुख मांगेंगे तो दुख भी आएगा क्योंकि सुख के पीछे दुःख है अतः भगवान से हम वह मांगे जिसमें हमारा कल्याण हो। कल्याण के आगे पीछे कुछ नहीं होता। परन्तु यह भी भगवान पर छोड़ दें क्योंकि हमें नहीं ज्ञात है कि हमारा कल्याण किस में है।

सच बात तो यह है कि हमें मांगना भी नहीं आता। जब भी हम पर थोड़ी विपदा आती है तो हम भगवान से यह मांगते हैं कि हमारी ये विपदा दूर करो परन्तु विपदा आने का मूल कारण क्या था हम यह विचार नहीं करते अर्थात् प्रभु को भूलना ही विपदा का कारण था तो यही मांगा जाए कि आपको भूलूं नहीं।

मथुरा में भरपूर ऐश्वर्य था क्यों न होता जहां श्री कृष्ण का राज हो वहां ऐश्वर्य होगा ही परन्तु भगवान श्री कृष्ण स्वयं कहते हैं

ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहिं।

यहां तक कि भक्त कृष्ण का स्मरण करते हैं तो कृष्ण भी भक्त का स्मरण करेंगे। संतों के लिये वे ऊधो से कहते है :–

ऊधो मोहि संत सदा अति प्यारे
मेरे कारण छोड़े जगत को
भोग पदारथ सारे

भक्ति मार्ग में भूल न हो तो भक्ति मार्ग अधूरा है। ज्ञान मार्ग में भूल हो तो ज्ञान मार्ग अधूरा है। संत जन हाथ में माला लेते हें। कारण केवल ईश्वर को स्मरण करने के लिये, उन्हें कभी भी भगवान की विस्मृति नहीं होती। वे भगवान से दूर नहीं होते, कहा गया है जो कभी भगवान से विभक्त न हो वही भक्त है। जिस भी कारण या भावना से हम उनका स्मरण करें वे उसी रूप में नजर आएंगे। कंस ने द्वेष भाव से कृष्ण को स्मरण किया तो कंस को भगवान काल के रूप में दिखाई दिये। कहने का तात्पर्य यही है कि यदि हम भगवान को स्मरण करेंगे तो भगवान को प्रिय होंगे उनकी कृपा के अधिकारी होंगे।

! पाद सेवनम् !

पाद सेवनम् भक्ति सोपान में सर्वप्रथम श्री लक्ष्मी जी का स्मरण होता है। श्री लक्ष्मी जी भगवान विष्णु की नित्य शक्ति हैं। वे आठों पहर भगवान के श्री चरणों की सेवा में लीन रहती हैं। जब जब भगवान अवतार लेते हैं तब–तब भगवती लक्ष्मी भी अवतीर्ण होती है। एक आख्यान के अनुसार महर्षि भ्रगु की पत्नि ख्याति के गर्भ से एक त्रिलोक सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई वह समस्त शुभ लक्षणों से सुशोभित थी। इसलिये उनका नाम लक्ष्मी रखा गया।

बड़ी होने पर जब उन्होंने नारायण का गुण प्रभाव सुना तो वे नारायण में अनुरक्त हो गई और नारायण को पति रूप में प्राप्त करने हेतु समुद्र तट पर घोर तपस्या करने लगी उन्होंने एक हजार वर्ष तक तपस्या की परीक्षा लेने हेतु देवराज इन्द्र भगवान विष्णु का रूप धारण कर आए और वर मांगने को कहा – लक्ष्मी जी ने उन्हें विश्वरूप दर्शन कराने को कहा तो इन्द्र लज्जित होकर लौट गए फिर भगवान विष्णु आए उन्होंने विश्वरूप का दर्शन कराया फिर भगवान विष्णु ने उन्हें पत्नि रूप में स्वीकार किया। लक्ष्मी जी तो भगवान की पत्नि बनी और उन्होंने भगवान की चरण सेवा की। परन्तु इस कालेकाल में भगवान का सामिप्य प्राप्त होना कठिन है।

भगवान के चरणों का दर्शन हम भिन्न भाव से भी कर सकते हैं। भक्त हनुमान जी ने स्वामी भाव से भगवान के चरणें की सेवा की। श्री लक्ष्मण जी के राम बड़े भ्राता थे। माता–पिता मानकर भी हम उनके चरणों का दर्शन कर सकते है। अनेकानेक भक्त संतों के चरणों का दर्शन करते हैं।

कलियुग में भगवान के चरणों का दर्शन प्रतीकात्मक रूप अर्थात् चित्र में, मूर्ति में अथवा धातु व पत्थर पर बने या अंकित किये गए चरणों का दर्शन किया जाता है। यह पाद सेवन भक्ति के अन्तर्गत आता है। भक्त कहते हैं :–

विष्णु चरण का जल हो जब
प्राण तन से निकले

और कहा गया है :–

मिलता है सच्चा सुख केवल
भगवान तुम्हारे चरणों में
यह विनति है पल छिन–छिन की
रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में

लक्ष्मण जी श्री राम के चरण दबाते थे। जब श्री राम ने सीता जी के आभूषण दिखाकर कहा लक्ष्मण पहचानो क्या ये तुम्हारी भाभी के आभूषण हैं तो लक्ष्मण जी ने केवल सीताजी के चरणों के आभूषण पहचाने क्योंकि वे केवल माता जानकी के चरणों को ही देखते थे। यह चरण दर्शनों की अनुपम भक्ति का उदाहरण है।

ऐसे अनेकानेक भक्त हैं जिनका ध्यान भगवान के मुखमण्डल की अपेक्षा चरणें की ओर अधिक रहता है। पाद सेवन भक्ति भी भक्तों को कृतार्थ करती है। आज भी वैष्णव भगवान के तीर्थों में जहां उनके चरण चिन्ह अंकित है विशेष पूजन करते हैं।

श्रीराम के अनुज प्रिय भरत जी को कौन नहीं जानता जिन्होंने भगवान राम की चरण पादुका अयोध्या के सिंहासन पर रख अयोध्या का राजकाज किया। जिन चरणों की धूल पाकर श्रापवश शिला रूप में परिवर्तित अहिल्या जी पुनः सुन्दर रूप में दिव्य धाम गई। केवट की चरण भक्ति के तो कहने ही क्या? भगवान राम के चरण धोकर ही उन्हें नाव में बिठाने की हठ की और स्पष्ट कहा चाहे लक्ष्मण जी मुझे तीर मार दें परन्तु बिना चरण धोए मैं आपको नाव में नहीं बिठाऊंगा और श्रीराम ने उसकी हठ को पूरा किया, केवट ने श्रीराम के चरण धोकर परिवार सहित चरणामृत का पान किया श्री हनुमान जी की श्रीराम के चरणों में अनन्य भक्ति की :–

"जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान
रूद्र देह तजि नेह बस वानर भे हनुमान
जानि राम सेवा सरस समुझि कर हनुमान
पुरखा ते सेवक भए हरते भे हनुमान"

मीरा बाई ने कहा :–

म्हाने चाकर राखो जी
गिरिधारी लाला म्हानें चाकर राखो जी

चाकर और क्या करता है स्वामी का पथ बुहारता है चरणों के दर्शन करता है। द्वापर युग में भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं अपने भक्त सुदामा के चरणों से कांटे निकाले यहां तक कि मुख से कांटे निकाले और भक्त के चरणों की दशा देख इतने द्रवित हुए कि आंसुओं से उनके चरण धो दिये हमारे भक्त पुराणों में भक्त के चरणों की महिमा भगवान के चरणें से भी अधिक की गई है। जिन भक्तों को भगवान के चरणों से नेह है वे आठों प्रहर उनके चरणों का ध्यान करते है। तुलसीदास जी ने कहा है :–

भव सिंधु अगाध परे नर ते।
पद पंकज प्रेम न जे करते।।
अति दीन मलीन दुखी नित ही।
जिनके पद पंकज प्रीति नहिं।।

और कहा :–

बार बार बर मांगऊं हरषि देहु श्रीरंग।

पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग।।

विभीषण जी ऐसे भक्त थे जिन्होंने श्रीराम जी के दर्शन हेतु अपने भ्राता रावण को त्याग दिया।

अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
देखेउ नयन बिरंचि सिव सेव्य जुगल पद कंजं

विभीषण जी की राम भक्ति थी। इसके लिये उन्होंने लंका को त्यागना उचित समझा।

रावण को भी कहा :—

राम चरण पंकज उर धरहू
लंका अचल राज तुम करहू।।

मुनी अत्रि जी ने श्री राम की वन्दना करते हुए कहा :—

बिनति करी मुनि नाई सिरू कह कर जोरि बहोरी
चरन सरोरूह नाथ जनि कबहूँ तजे मति मोरि।।

भक्त चरित्र में यह अनेकानेक स्थानों पर प्राप्त होता है। जहां भक्तों ने भगवान के चरणों की सेवा मांगी है।

! अर्चन पूजन ।

श्री पृथु अर्चन पूजन भक्ति के आचार्य है। आप भगवान श्री हरि के अंशावतार और आदि राजा है। आपने धरती को अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार किया था इसलिये धरती का एक नाम पृथ्वी भी हो गया।

महाराज पृथु ने निन्यानवे अश्वमेघ यज्ञों द्वारा भगवान श्री हरि का भली भांति अर्चन पूजन किया। उनके सौवें अश्वमेघ यज्ञ होने पर ईर्ष्यावश इन्द्र ने उनके घोड़े का हरण कर लिया। इस पर राजा पृथु इन्द्र का वध करने के लिये तैयार हो गए। यह देखकर भगवान विष्णु स्वयं इन्द्र को लेकर राजा पृथु के समक्ष प्रकट हुए और इन्द्र को क्षमा करने के लिये कहा। राजा पृथु को तो उनके अर्चन पूजन का फल प्राप्त हुआ। वे सब कुछ भूलकर श्री हरि के चरणों में पड़ गए और इन्द्र को गले लगा लिया। जब भगवान ने राजा पृथु को वरदान मांगने के लिये कहा तो राजा पृथु ने कहा है प्रभो मुझे मोक्ष आदि तुच्छ विषयों की प्राप्ति की इच्छा नहीं है। मुझे तो आप दस हजार कान (अर्थात् दो कानों में दस हजार कानों की क्षमता) प्रदान करें जिससे मैं आपके गुणगाान को सुनता रहूँ। ऐसी उदात्त भक्ति राजा पृथु में थी।

भक्त जब अर्चन पूजन करता है तो भगवान उसकी करूण पुकार सुनकर उसके द्वार आ जाते है। कवि रविन्द्र नाथ टैगोर ने अपनी गीतांजली में लिखा है :—

कितना तप किया मैंने, न आए तुम तब भी
एक करूणा की लहर उपजी दर्द उभरे सभी
सुन यह करूण तान
तुम दौड़ कर मेरे द्वार आ गए
अपने आसन सिंहासन से
तुम नीचे आ गए

भक्त हृदय भगवान से अनुनय विनय करता है :—

हे मेरे नाथ :—

मुझे अपना लो, अपना बना लो इस बार
अबकी बार न लौटो, कर जाओ हृदय पर अधिकार

हे मेरे नाथ :–

कौन सी धुन पर मैं तुम्हें क्या सुनाऊं

कवि रविन्द्रनाथ टैगोर कवि होने के साथ–साथ ऐसा प्रतीत होता है कि वे भगवान के भक्त थे। आपकी गीतांजली पर आपको नोबेल पुरस्कार मिला था यह सर्वविदित है।

वह नित हम सबको देखते पल पल
हमें निरखते रहते क्षण–क्षण नज़र
फिर भी हम न देख पाते उनका यह कैसा खेल
वह हमारी रखवाली करते निरन्तर
अपनी गोद बिछाई उन्होंने हम सब के घर
निरन्तर हम करते पूजा पर वह सामने न आते
कितना ही हम कहें पर वह सदा स्वयं को छिपाते
उनकी छाया सदा कल्याण के लिऐ तत्पर
अपनी गोद बिछाई उन्होंने हम सबके घर

– रविन्द्रनाथ टैगोर (गीतांजली से)

अर्चन पूजन में सामग्री की आवश्यकता भी होती है। धूप, दीप, नेवैद्य, पुष्प जल आदि भक्त श्रद्धा से यह समर्पित कर भगवान का पूजन करता है। राजा अम्बरीष स्वयं अपना मन्दिर बुहारते ठाकुर जी को स्नान आदि करा श्रृंगार करते प्रसाद भी स्वयं बनाते। भगवान उनकी इस भक्ति से अत्यन्त आनन्दित होते। रिषी दुर्वासा जी के राजा अम्बरीष पर क्रोध करने पर भगवान ने उन्हें अम्बरीष जी से ही क्षमा याचना के लिये कहा। भक्त उनकी किसी भी पद्धति से अथवा किसी भी प्रकार से भक्ति करे भगवान भक्त के प्रति किया अपराध किसी का भी सहन नहीं कर सकते।

कपि सुग्रीव बन्धु भय व्याकुल
आयो सरन पुकारी।
सहि न सके दारून दुख जन के
हत्यो बालि सही गारी।।

पूजन अर्चन में नियम धर्म का स्थान मान्य है। स्नान आदि शुद्ध आसन आदि का होना आवश्यक है। अनेक विद्वान पंडित यदि दिन में तीन बार पूजन करते हैं तो तीनों बार स्नान करते हैं।

कर्माबाई श्री जगन्नाथ जी के लिये भोजन बिना स्नान किये ही बनाती थी। यह सोचकर कि लाला अभी खिचड़ी खाने आएगा, नहीं बनी देर हो गई तो क्या खएगा। एक बार विद्वान पंडितों ने उन्हें फटकारा व वहां से निकाल दिया। कर्माबाई कुछ दूर जाकर एक झोंपड़ी में रहने लगी। संत पंडितों ने स्नान आदि के पश्चात् भगवान को भोग लगाना चाहा तो जगन्नाथ जी के मुख पर खिचड़ी लगी थी। वे समझ गए कि भगवान जगन्नाथ वही भोग लगा कर आए हैं। अतः उन्होंने कर्माबाई से क्षमा मांगी व आदर सहित उन्हें वहां लाकर स्थान देकर कहा कि आज से आप ही श्री जगन्नाथ जी का भेजन बनाएं।

यह तक कहा गया कि श्री जगन्नाथ जी कहते भूख लगी है जल्दी कर माँ इसी से उनका नाम कर्माबाई पड़ा और यह कहा जाय कि जिन शालिगराम जी की विधिवत पूजा होती है उन्हें सदन कसाई वजन

तोलने के लिये तराजु में रखता व मांस तोलता परन्तु भगवान शलिगराम जी इसमें ही प्रसन्न होते व समय आने पर सदन कसाई का भी उद्धार किया। परन्तु पूजन अर्चन के समय श्रद्धा का होना आवश्यक है।

! वन्दन !

श्री अक्रूर जी पद वन्दन भक्ति के आचार्य हैं। भक्तमाल के टीकाकार श्री प्रियादास जी ने लिखा है :—

चले अकरूर मधुपुरी ते बिसूर नैन
चली जलधारा कब देखौं छविपूर को।

कंस ने अक्रूर जी को कृष्ण बलराम जी को मथुरा लाने के लिये भेजा था। अक्रूर जी प्रेमातुर होकर गोकुल गए। प्रेम चिन्तित अक्रूर जी की आंखों से अश्रुधार बह रही थी। वे सोचने लगे कब मैं जाकर श्युासुन्दर को देखूं। वे सोचने लगे जिस प्रकारा मेरा मन प्रसन्न हो रहा है ऐसा विदित होता है मुझे प्रभुदर्शन होंगे। उन्हें शरीर की सुध—बुध ही नहीं रही ज्योहिं मार्ग में श्रीकृष्ण के चरण चिन्ह देखे वे सहसा रथ से उतर कर ब्रजरज में लौटने लगे। वन्दन भक्ति के आचार्य अक्रूर जी के ह्रदय में नयी प्रेंममयी अभिलाषा प्रकट हुई। यही कारण था कि मार्ग में उनके मनोरथ पूर्ण हो गए। प्रभु के रूप को देख वे आनन्द विभोर हो गए।

वन्दन प्रभु को बन्धन में डालता है। भागवत का प्रारम्भ और अन्त वन्दन से हुआ है। 'नमामि हरि परम' केवल श्रीकृष्ण को ही वन्दन नहीं किया कहाः—

'श्री राधाकृष्णमये वय नमुः'

इसमें श्री का अर्थ राधा जी है — श्री राधा जी के साथ विराजित ठाकुर जी को मैं वन्दन करता हूँ।

वन्दन प्रभु को बांधता है प्रभु को वन्दन कहीं भी किया जा सकता है। चाहे देवालय में जाकर भगवान के दर्शन करें या घर में विराजमान भगवान को यों तो भगवान सभी के ह्रदय में विराजमान रहते हैं परन्तु मन्दिर जाकर या घर पर समय से भगवत् प्रेमी भक्त वन्दन करते हैं।

वन्दन का अर्थ केवल भगवान के हाथ जोड़ना ही हनीं अपितु भगवान के श्रृंगार रूपमाधुर्य चरणारविंद के सौन्दर्य का रसपान है जिस प्रकार अहिल्या जी ने मांगा :—

पद कमल परागा रस अनुरागा य
मम मन मधुप करे पाना।

भगवान के एक टक दर्शन वन्दन हैं जैसे विभीषण जी ने जब श्रीराम को देखा :—

देखि राम छवि धाम बिलोकि
रहेउ ठिठुकि इक पल रोकि

वन्दन भक्ति में लीन भक्त इसी प्रकार नयनाभिराम दर्शन करते हैं। कहा गया है जो भगवान श्रीकृष्ण के इस प्रकार दर्शन करता है प्रभु उसके साथ चल देते है। वृन्दावन में बांके बिहारी जी के मंदिर का पर्दा खुलता व बंद होता है ताकि बांकेबिहारी जी वहीं रहे।

कृष्ण का अर्थ है आकर्षण ये जिसे चाहते हैं उसे अपनी ओर खींच लेते हैं। वन्दन का क्रिया रूप है विनती। भगवान से अनुनय विनय करने पर मन शान्त होता है। मन पवित्र होता है। भगवत् दर्शन कर यदि हमारे नेत्र थकते न हों तो जानिये वन्दन हुआ।

विनय किन्हीं चतुरानन, प्रेम पुलक अतिगात
सोभा सिन्धु बिलोकत लोचन नहीं अघात।।

कविवर रविन्द्र नाथ टैगोर की भगवान से दीन विनती :–

पड़ा रहूंगा तुम्हारे आसन के नीचे
माटी के ऊपर
तुम्हारे चरणों में लोट रजकण में
मैं हो जाऊंगा धूसर।
मुझे उतार धरो
अपने चरणों के तल में
ह्दय स्वच्छ कर दो
जीवन मेरा धो दो
मेरे आसुओं के जल में

ह्दय में जब भक्ति भाव उत्पन्न होता हे तो मनुष्य वन्दन करता है जिस प्रकार भी वह प्रयोजन करता है गाकर अथवा लिखकर ईश्वर प्राप्ति का प्रयोजन केवल मनुष्य शरीर से ही सम्भव हो सकता है। मनुष्य प्रयत्न करे तो भगवान प्रकट हो सकते हैं जैसे काष्ठ के रगड़ने से अग्नि उत्पन्न हो सकती है।

! दास्य !

श्री हनुमान जी भगवान की दास्य भक्ति के आचार्य है :–

'दासोऽह कोसलेन्द्रस्य'

अर्थात् मैं कोसलेन्द्र श्री राम जी का दास हूँ। श्री हनुमान जी के जन्म के सम्बन्ध में यह कथा प्रचलित है कि भगवान शिव अपने ईष्टदेव प्रभु श्रीराम जी की सेवा के लिये भगवान (शंकर) अपना रूद्ररूप त्याग कर वानर रूप में अवतरित हुए। क्योंकि भगवान शंकर को यह ज्ञात था कि सज्जन उसी शरीर का आदर करते हैं जिसे श्रीराम से प्रेम हो। इसी स्नेहवश रूद्ररूप त्याग कर भगवान जी ने वानर रूप धारण किया।

दास्य भक्ति भाव पाद सेवनम भाव के ही अनुरूप है। यह भक्ति भाव ऐसा है जो किसी धनवान को भी हो सकता है या किसी निर्धन को भी। वास्तव में भगवान का दास वही है जो अपनी सम्पत्ति को भगवान की सेवा में लगाए। सम्पत्ति को त्याग कर भगवान के चरणों में बैठ सेवा करें। धन के अभिमान से एक धनवान अपने सेवक के ही किसी अपराध पर क्षमा नहीं कर सकता कठिन हैं कि वह भगवान का दास बने दास को कुछ नहीं चाहिये उसमें क्षमा व विनीत भाव होना आवश्यक है।

कोई संत जिसके पास अपार भक्ति है व सिद्धि है। यदि वह किसी के अपराध को क्षमा करता है तो वही वन्दनीय है। सच्चा संत है कहा गया है :–

क्षमा सोहति वा भुजंग को
जाके कंठ गरल

बहुत ऊँचे संत को परमहंस भी कहा गया है। हंस में एक विशेषता होती है कि वह दूध में से पानी अलग कर देता है 'दूध का दूध और पानी का पानी' वह किसी में कोई बुराई देखते हैं तो उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं।

साधू ऐसा चाहिये जैसा सूप सुभाव।
सार सार का गहि रहे थोथा देई उड़ाय।।

दास को कुछ नहीं चाहिये वह तो कहता है कि भगवान मैं तो आपके दासों का दास हूँ। श्री रविन्द्र नाथ टैगोर लिखते है :–

नीचे बहुत नीचे धूलभरी इस धरती पर
जहां नहीं लगती स्थान की कीमत
न लगता कर
खींची लकीरों से वहां कुछ भी विभाजित नहीं है।
जहाँ एक समान है मान और अपमान
सबमें सबके बीच में से मुझे भी
दे देना छोटा का स्थान

दास्य भाव से भरे भक्त को भगवान इतना प्रेम करते हैं कि उनका भक्त कठिन से कठिन कार्य करने में भी सक्षम होता है इसमें अचरज नहीं

प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहिं,
जलधि लांघ गए अचरज नाहिं।

दास भक्त तो केवल अपने स्वामी प्रभु का नाम स्मरण करता रहता है अर्थात् हनुमान जी के मुख में राम नाम था।

शबरी तो नवधा भक्ति की आचार्य थी। वह दासी की भांति अपने प्रभु का पथ बुहारती। एक कुटिया में प्रभु नाम स्मरण करते करते अपना जीवन गुजारती फिर ऐसी दासी भक्त को श्रीराम क्यों न दर्शन देते केवल दर्शन ही नहीं उसके झूठे बेर भी खाए। सच्चे दास को स्वामी भी भुला नहीं सकते।

मीरा बाई महल छोड़कर संतों के बीच बैठ कर कहतीं :–

दासी मीरा लाल गिरधर
म्हानें चाकर राखो जी
गिरीधारी लाला म्हानें चाकर राखो जी

दास्य भक्ति कठिन है सेवक को स्वामी की सेवा करनी पड़ती है।

! संख्यमात्म !

भक्ति के आचार्यों का कहना है कि भक्त अपने भगवान से कोई न कोई सम्बन्ध अवश्य जोड़ ले। जिस सम्बन्ध में उसे अपनत्व लगे भक्त को यह अनुभव हो जाय कि भगवान श्रीकृष्ण मेरे हैं।

'पितु मातु सहायक स्वामी सखा
तुम ही एक नाथ हमारे हो'

एक सम्बन्ध भगवान का भक्त से सखा का है। श्रीकृष्ण से सम्बन्ध में स्त्री पुरूष होने से कोई तात्पर्य नहीं है। द्रोपदि ने भगवान कृष्ण को सखा ही माना था। कृष्ण भी उन्हें हे सखे कहकर सम्बोधित करते थे।

सुदामा जी व श्रीकृष्ण जी शिक्षा ग्रहण के समय सन्दीपनी जी के आश्रम में एक–दूसरे के मित्र रहे। भावी वश सुदामा जी को घोर निर्धनता का सामना करना पड़ा परन्तु जीवन के उन कठिन क्षणों में भी सुदामा जी भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति में लीन रहे जो फल सुदामा जी को प्राप्त हुआ सर्वविदित है।

साक्षात श्री हरि ही भक्तों पर कृपा करने के लिये जगत के कल्याण के लिये और संसार में धर्म की स्थापना के लिये नाना अवतार धारण करते हैं। वे नर–नारायण (श्रीकृष्ण व अर्जुन) इन दो रूपों में बद्रीकाश्रम से लोकमंगल के लिये तप करते हैं। द्वापर युग में कृष्ण और अर्जुन के रूप पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए श्रीकृष्ण अर्जुन से अभिन्न उन श्याम सुन्दर के समवस्यक सखा और उनके प्राण ही थे। श्रीकृष्ण के प्राण धनन्जय में बसते थे।

कहा जाता है कि एक बार पार्वती जी ने भोलेनाथ से कहा प्रभु आप जिन भक्तों की प्रशंसा करते हैं मैं निवेदन करती हूँ कि आप मुझे भी उनका दर्शन कराएं। इस पर भोलेनाथ पार्वती जी को लेकर इन्द्रप्रस्थ पधारे। उस समय अर्जुन ऐसी योग निद्रा में थे कि उनके शरीर के रोम–रोम में श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण की ध्वनि

निकल रही थी। सभी देवताओं व श्रीकृष्ण के पहुंचने पर भी अर्जुन उसी परिस्थिति में रहे। ब्रह्मा जी नारद जी व स्वयं श्रीृष्ण भी नृत्य करने लगे। जब श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण की ध्वनि भगवान भोलेनाथ के कानों में पड़ी तो उन्होंने भी अपना त्रिभुवन मोहन ताण्डव नृत्य आरम्भ कर दिया। पार्वती जी भी स्वर और ताल के साथ मधुर वाणी में हरिगुण गाने लगी। भक्तराज अर्जुन के प्रेम–प्रवाह ने सभी को सराबोर कर दिया। धन्य हैं अर्जुन और धन्य है उनकी संख्य भक्ति।

जब भीष्मपितामह ने यह प्रतिज्ञा की कि 'कल युद्ध में मैं अर्जुन को मार दूंगा' तो श्रीकृष्ण को रात्रि में नींद नहीं आई परन्तु जब उन्होंने अपने सखा को निश्चिंत निद्रा में देखा तो जगाकर पूछा तुम्हें ज्ञात है पितामह ने क्या प्रतीज्ञा की है। अर्जुन ने उत्तर दिया हां ज्ञात है – श्रीकृष्ण ने आश्चर्य से कहा फिर भी सो रहे हो इस पर अर्जुन ने कहा जिसके लिए आप जाग रहे हों उसे चिंता की क्या आवश्यकता है। श्रीकृष्ण द्रोपदी को लेकर पितामह के शिविर में गए रात्रि में द्रोपदी की पादुका स्वर कर रही थी तो भगवान नारायण ने उनकी चरण पादुका अपने पीताम्बर में लपेट ली और द्रोपदी को पितामह को प्रणाम करने को कहा। जब उन्होंने प्रणाम किया तो पितामह ने उन्हें सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया जबकि पितामह ने दुर्योधन की पत्नि को आशीर्वाद के लिये आने को कहा। इस प्रकार भक्तवत्सल अपने भक्त सखाओं की रक्षा करते हैं।

सखा अन्तरंग होता है क्योंकि व्यक्ति जो बात अपने माता–पिता से नहीं कह सकता वहीं बात अपने मित्र को बिना किसी हिचकिचाहट के कह सका है। भक्ति संख्य भाव का स्थान विशेष होता है।

साधारण मनुष्य भी मित्रता को अपने जीवन की सच्चाई से निभाते हैं तो भगवान श्रीकृष्ण के लिय क्या कहा जाय। ब्रज में जो श्रीकृष्ण ने अपने गोप सखाओं के साथ लीला की वह भक्ति साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है।

कलिकाल में यदि एक मित्र को विशेष प्रभुता प्राप्त हो जाती है तो वह अभिमानी हो जाता है। मित्र को भूल जाता है। ज्ञानी मनुष्य दृष्टा बना रह सकता है परन्तु सरल बालक सखा भाव से भगवान का हाथ पकड़ कर चलता है व अपनी रूचि के अनुरूप भगवान से वस्तु प्राप्ति की हठ करता है। उसकी यह हठ भगवान सहर्ष ही पूरी करते हैं। तात्पर्य यही है कि भक्ति में ज्ञान की आवश्यकता नहीं। सरल मन को भक्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है। जबकि ज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुंच कर भी मन हार कर कहता है :–

"पैठा हूँ
इस रूप उदधि में
अब घाट–घाट मारा–मारा न फिरूंगा
लेकर अपनी नौका जर्जर।।

– रविन्द्रनाथ टैगोर

अतः मूल अर्थ यही है भक्ति और ज्ञान एक ही तत्व है। भक्ति की ऊंचाई परिपक्व ज्ञान है। ज्ञान की पराकाष्ठा ही भक्ति है। इन दोनों की उपस्थिति में मनुष्य भक्ति मार्ग पर अग्रसर होता है। यही उसके कल्याण का मार्ग है और भगवान उसके परम सखा हो जाते हैं।

! निवेदनम ! (आत्म निवेदनम)

यदि संख्य भाव को पृथक कर देखा जाय तो फिर यह भक्ति मार्ग है। आत्मनिवेदनम् अर्थात् भगवान के श्रीचरणों में अपना सर्वस्व और स्वयं को समर्पित करना। इस प्रकार की भक्ति के लिये राजा बलि अग्रगण्य हैं।

राजा बलि ने प्रेम से भगवान बामन को अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। उनका हृदय भक्ति भाव में मग्न हो गया। राजा बलि भक्त शिरोमणि प्रहलाद जी के पौत्र थे। राजा बलि गुरू शुक्राचार्य जी ने उन्हें बहुत समझाया कि राजा बलि तुम्हारे सामने स्वयं विष्णु भगवान बामन रूप धर कर आए हैं। ये तुम्हें पृथ्वी पर भी नहीं रहने देंगे परन्तु राजा बलि तीन पग भूमि दान के संकल्प पर अटल रहे। जब भगवान ने अपना तीसरा चरण रखने हेतु स्थान मांगा तो राजा बलि ने अपना मस्तक झुका कर कहा आप मेरे मस्तक पर अपना चरण रखें। इस प्रकार राजा बलि पाताल लोक गए। उनकी यह अपार भक्ति देख भगवान भी द्रवित हो गए। उन्होंने वर मागने के लिये कहा इस पर राजा बलि ने नित्यप्रति भगवान के दर्शन चाहे और भगवान भक्त के द्वारपाल बन गए। यह करूणामयी की करूणा है, जब भक्त भक्ति में मग्न हो जाता है तो उसे अपनी चिंता नहीं रहती अपितु भगवान उसकी रखवाली करते हैं।

यह सत्य है कि आत्मा ही आत्मा का गुरू है। यदि राजा बलि आत्मा का कहना न मानकर गुरू का कहना मानते तो भगवान को प्राप्त नहीं कर सकते थे। मनुष्य को अपने परम लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति का प्रयास करना है। जब मनुष्य आत्मनिवेदन भक्ति मार्ग पर अग्रसर होता है तो वह निश्चित ही निष्काम भक्ति में लीन होता है। उसे तो भगवान का दर्शन चाहिये भक्ति मार्ग में पतन से व्यक्ति भोगी बनता है और ज्ञान मार्ग में पतन से नास्तिक व योग मार्ग में भटका रोगी बनता है।

अपना सर्वस्व समर्पित कर मनुष्य मन के बन्धन से मुक्त हो जाता है। आत्मा सदैव मुक्त ही है। मन को बन्धन से मुक्त करना है। जब दीनता आती है तो भव बन्धन खुल जाता है। मनुष्य सरल तरल हो जाता है। आत्मा नृत्य करती है। आत्मनर्तन है। आत्मनर्तन तो श्रृंगार भी करेगा। आत्मा का श्रृंगार क्या है? नृत्य का आधार मंच क्या है? व इस नृत्य की मर्यादा क्या है? आत्मा का श्रृंगार भक्ति है, रंगमंच ही अर्न्तआत्मा है अन्तःकरण है। इसके लिये कोई आधुनिक स्टेज नहीं है। साधक आत्मा को मंच बनाकर ही नृत्य करेगा। सुतीक्ष्ण जी का नृत्य उन्मुक्त करने वाला है। अप्सरा का नृत्य तीक्ष्ण है पतन करने वाला है।

परमात्मा वही निवास करता है जहां शांति भक्ति निवास करती है। परमात्मा के चरणें में सर्वस्व समर्पण ही भक्ति की चरम सीमा हैं आत्मा बिकने की नहीं अपितु बांटने की वस्तु है। परमात्मा जब हृदय में विराजते हैं तो श्रृंगार आशीर्वाद हो जाता है। भक्त रूप निखर उठता है। स्वतः ही भक्त हृदय प्रसन्न रहता है, मुस्कुराता रहता है, जमाना कह उठता है :–

जब देखो तब मुस्कुराते रहते हो
इतनी खुशियां तुम कहां से लाते हो।

हमारे घर में किये गए यज्ञ शुभ हो सकते हैं। यदि हम भगवान की शरणागत हो तो। शरणागत स्थिति भी भगवान ही बनाते हैं। भक्ति अध्यन नहीं अभ्यास है।

यदि मनुष्य चाहे कि कोई उसकी प्रार्थना सुन ले तो यह अत्यन्त कठिन है, असम्भव भी है। यदि भगवान के समक्ष आत्मा से निवेदन करें तो वे सुन सकते हैं। एक ही मार्ग है, वह भक्ति मार्ग है। भक्ति मार्ग में

यदि भगवान हमारी व्यथा सुन लें तो हमारी व्यथा दूर हो या फिर हम भगवान की कथा सुन लें तो हमारी व्यथा दूर हो क्योंकि संसार तो दुखालय है जहां हम सुख ढूंढ रहे हैं जो अप्राप्त है। अतः शरणागति ही सर्वोपरि भाव है। यदि मनुष्य में भक्ति भाव या आस्था न हो तो चाहे वह मन्दराचल पर्वत की भांति ही क्यों न हो धंस जाएगा।

भगवान प्रेम भक्ति व विश्वास से ही प्राप्त किये जा सकते हैं। एक स्थान पर भगवान स्वयं कहते हैं :– मुझे संत अत्यधिक प्रिय हैं अर्थात् अपनी कृपा के लिये पात्रता देखते हैं। ठीक उसी प्रकार शेरनी का दूध या तो उसके बच्चे के पेट में रह सकता है या फिर स्वर्ण पात्र में भक्ति मार्ग में कटिबद्धता, विश्वास से ही यह पात्रता मनुष्य रख सकता है। ईश्वर प्राप्ति के लिये व्याकुलता भी आवश्यक है। कवि रविन्द्रनाथ लिखते हैं :–

औरों को मैं भूल जाऊं पर
शायद तुम्हें नहीं
दिन पर दिन बीत गए
पर तुम्हारे दर्शन नहीं मिले।

यह अकुलाहट जब चरम सीमा पर पहुंच जाती है तो भगवान भी द्रवित हो जाते हैं। तुरंत ही अपने भक्त पर कृपा वर्षा करते हैं। यही भक्ति का आरम्भ है। भक्ति का अंत कहीं नहीं है। केवल भक्त का भगवान की ओर अग्रसर होने का प्रयास मात्र है। ठीक उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति की कोई उम्र नहीं हैं यह निरन्तर प्रवाहित धारा है जिसका कोई आदि व अंत नहीं है।

'प्रेम लक्षणा भक्ति'

इसका वर्णन पहले भी किया गया है परन्तु एक जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि क्या यह नवधा भक्ति से विलग है। हम सामाजिक प्राणी है। हमारा प्रेम घर परिवार के सदस्यों के प्रति होता है परन्तु भक्ति के इस सोपान का सम्बन्ध ईश्वर से है। घर परिवार के प्रेम को आसक्ति कह सकते हैं। ईश्वर के प्रति प्रेम को भक्ति ही कह सकते हैं। गोपियां प्रेम से परिपूर्ण थी या यह कहा जाय कि कृष्ण भक्ति प्रेम से परिपूर्ण थी।

वास्तव में यदि प्रेम न हो तो किसी भी प्रकार की भक्ति नहीं हो सकती। सम्पूर्ण नवधा भक्ति का आधार ही प्रेम है। हमें जिससे प्रेम होता है उसकी बातें करते हैं। उसे सुनने की लालसा रहती है। उसके लिये हम गीत लिखते हैं, गाते हैं, उसी का स्मरण करते हैं, उसका मंगल मनाते हैं। यही प्रेम जब ईश्वर के प्रति होता है तो यह नवधा भक्ति के सोपानों पर विचरण करने लगता है। हम कहीं भी रहें यदि हमारा मन कृष्ण से प्रेम करता है तो मन वृन्दावन हो जाता है।

गोपियों को ब्रज बैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय था। जब कृष्ण मथुरा चले जाते हैं या रास मण्डल के मध्य से अन्तर्धान हो जाते हैं तो गोपियां उन्हें दसों दिशाओं में खोजती हैं और प्रार्थना करती हैं – है परम दयालु दर्शन दो गोपियां इतनी भाव विभोर हो जाती हैं कि उन्हें सभी में कृष्ण दिखाई देते हैं। सूरदास जी लिखते है :–

निस दिन बरसत नैन हमारे
सदा रहति पावस रितु हम पर

जबते श्याम सिधारे

गोपियों को दृढ़ विश्वास है कि हमारे कृष्ण हमें छोड़कर नहीं जाते। प्रेम लक्षणा भक्ति इतनी दिव्य है कि उन्हें घर बैठे भगवान की प्राप्ति हो गई। ईश्वर प्राप्ति के लिये घर छोड़ने की आवश्यकता नहीं है अपितु घर को मन्दिर बना विवेक पूर्वक रहें। घर छोड़ने की अपेक्षा घर की आसक्ति को छोड़ दे। यही भागवत शास्त्र भी कहता है। अतः सम्पूर्ण नवधा भक्ति का मूल है। प्रेम लक्षणा भक्ति जब भक्त को भगवान से प्रेम होता है तो भगवान को भी भक्त से प्रेम होता है। भक्ति का सागर अपार है, विशाल है, अनन्त है। भगवान से प्रेम में ऐसा रसायन परिवर्तन होना चाहिये जो फिर परिवर्तित न हो। ठीक उसी प्रकार कि दूध से दही तो बनता है परन्तु फिर वह दूध नहीं बन सकता है। फिर तो दधि मंथन से नवनीत प्राप्त होता है। ठीक उसी प्रकार कि सागर मंथन से अमृत प्राप्त हुआ। भक्ति का प्रकाश सर्वत्र व्यापक रूप से फैलता है और भक्त का कल्याण निश्चित होता है। दिन पर दिन नवीन लगता है :–

दृगन्त कान्त भंगिनि
सदा सदा की संगिनी
दिने दिने नवम नवम
नमामि नन्द सम्भव

लेखिका परिचय

श्रीमती यशोधरा जागावत (०१:०२:१९५०) हिन्दी भाषा की कवयित्री हैं। आपका जन्म नीमच प्रांत (मध्य प्रदेश) में हुआ था तथा उन्होंने विक्रम विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन से हिंदी साहित्य में मास्टर्स किया था | विवाहोपरांत वे जयपुर में वास करने लगीं तथा वे राजस्थान लेखिका साहित्य संसथान से जुड़ गयीं|

उनका लेखन न केवल काव्य बल्कि उनके सामाजसुधार के कार्य और महिलाओं के प्रति चेतना भावना से भी प्रभावित है।

उन्हें हिंदी के अलावा राजस्थानी व बृज भाषा की भी अच्छी जानकारी है |

वर्तमान में वे जयपुर में ही रह रहीं हैं |

निवास स्थान : 4/298, मालवीय नगर, जयपुर (राज.)
मो. : 8058057566, 0141–2525694

लेखिका परिचय

श्रीमती यशोधरा जागावत (०१:०२:१९५०) हिन्दी भाषा की कवयित्री हैं । आपका जन्म नीमच प्रांत (मध्य प्रदेश) में हुआ है तथा आपने विक्रम विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन से हिंदी साहित्य में मास्टर्स किया है | विवाहोपरांत आप जयपुर में वास करने लगीं तथा राजस्थान लेखिका साहित्य संसथान से जुड़ गयीं| आपका लेखन न केवल काव्य बल्कि सामाजसुधार के कार्य और महिलाओं के प्रति चेतना भावना से, तथा भक्ति रस से भी प्रभावित है। आपको हिंदी के अलावा राजस्थानी व बृज भाषा की भी अच्छी जानकारी है |

वर्तमान में आप जयपुर में ही रह रहीं हैं |

निवास स्थान : 4/298, मालवीय नगर, जयपुर (राज.)

मो. : 8058057566 0141–2525694